शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

गीता में प्रवृत्ति-निवृत्ति साधन

डॉ0 (श्रीमती) कौशल्या

वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत, कालपी कालेज, कालपी, जालौन (उ0प्र0)

www.shodh.net

गीता में प्रवृत्ति-निवृत्ति साधन

विषय संकेतः- *श्रीमद्भगवद्गीता, प्रवृत्ति, निवृत्ति, जीवन-दर्शन*

श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र भारतीय दर्शनों के प्रस्थानत्रयी हैं। प्रायः यह माना जाता है कि भारतीय दर्शन अन्ततः मनुष्य को सन्यास की ओर उन्मुख करते हैं। किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करते हुए मानसिक रूप से फलासक्ति से ऊपर उठाता है। यह शोध आलेख श्रीमद्भगवद्गीता के प्रवृत्ति और निवृत्ति पक्ष का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करता है।

भारत प्राकृतिक विचित्रता का आगार है। ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ, गहरी सर्पाकार नदियाँ, गंगा, यमुनी संस्कृति, विस्तृत सागर सभी कुछ कौतूहल या आश्चर्य के विषय हैं। भारतीय संस्कृति और जीवन में निरंतरता का भाव कुछ विशेष है। इसमें नई प्रवृत्तियाँ, पुरानी प्रवृत्तियों के संशोधन व संवर्द्धन के रूप में उपस्थित होती रही हैं। उपनिषद वेदों का सार है, और गीता उपनिषदों का निचोड़, शंकर, रामानुज, आचार्य अपने-अपने दर्शनों को वेद, उपनिषद, गीता पर आधारित मानते हैं। उनके दर्शन मौलिक हैं, तथा भिन्न तत्व व अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने कें लिए प्रस्तुत हुये हैं।

गीता का दर्शन एक सच्चा मानव जीवन-दर्शन है। प्रत्येक जीव जन्म से लेकर मृत्यु तक का जीवन जीता है, और उसे भोगता है। विद्वानों का विचार है कि जीवन समय की वह दूरी है जिसका विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक है किन्तु गीता का दर्शन जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद भी जीवन मानता है। आत्मा अजर अमर है। नये वस्त्रों के समान ही वह नये कलेवर धरण करता है

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देहि।।[1]

गीता कोई प्रतीकात्मक या संकेतात्मक ग्रन्थ नहीं है, यह वास्तविक अर्थ को प्रकट करने वाली सरल व सुबोध भाषा शैली से युक्त है। वह स्वयं अपनी बात को दुहरा दुहरा कर स्पष्ट करती है तथा अपने आशय और भाव को स्पष्ट बल देकर भी कह देती है।

श्रीमद्भगवत्गीता विशालकाय ग्रन्थ महाभारत का ही सारतम अंश है। इसके सात सौ श्लोकों के भीतर श्रेयस् प्राप्ति के उपाय अत्यन्त सरल ढंग से व्यक्त किये गये हैं। जिसको सर्व साधारण जन भी सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। गीता दलगत प्रतिद्वन्दिता से कोसों दूर है। इसमें परम रमणीय साधन मार्ग की व्यवस्था की गई है, जो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों वाले प्राणियों कें लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। इसीलिये सात सौ श्लोकों वाली गीता की कामधेनु व कल्प वृक्ष से तुलना की गई है। गीता के महत्व का कारण उसकी समन्वय दृष्टि है। आत्मा के अपरोक्षात्मक अनुभूति की प्रतिपादक उपनिषद् प्रकृति-पुरुष की विवेचना से मोक्ष प्राप्ति का उपदेशक, सांख्य, प्रतिष्ठित विधि विधानों के अनुष्ठान से अत्यन्त सुख रूप स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग बतलाने वाली कर्म मीमांसा, अष्टांग योग द्वारा प्रकृति के बन्धन से मनुष्य को मुक्त कर कैवल्य को प्राप्त करने का मार्ग बतलाने वाला योग, इन समस्त दार्शनिक तत्वों का जितना सुन्दर समन्वय गीता में प्रतिस्थापित किया गया है वह नितान्त उपादेय है।

जिस परिस्थिति में गीता का उपदेश श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया वह विलक्षण था। महाभारत का विश्वविख्यात युद्ध होने को था, एक भाई दूसरे भाई के सम्मुख उसकी हत्या कर राज्य पाने की लालसा रखता था, ऐसी स्थिति में विषादग्रस्त अर्जुन का सांसारिक परिस्थितियों के बीच पड़कर कर्म के विषय में संशय रखने वाले मनुष्य का प्रतिनिधित्व करता है। श्री कृष्ण ने गीता ज्ञान के रूप में कर्तव्यपरायणता का ज्ञान प्रदान किया। गीता के उपदेश सरल व स्पष्ट होने के साथ साथ आचार और कर्म का प्रतिपादन करते हैं। इसलिए गीता को योग शास्त्र भी कहा गया है। योग का एक अर्थ व्यवहार भी है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। ज्ञान और कर्म का समन्वय भक्ति है। भक्त ही सच्चे, अर्थों में ज्ञानी और कर्म योगी हो सकता है। गीता व्यवहार शास्त्र है। इसलिए गीता की पुष्पिका में लिखा है -

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

गीता में प्रवृत्ति–निवृत्ति साधन

डॉ0 (श्रीमती) कौशल्या

वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत, कालपी कालेज, कालपी, जालौन (उ0प्र0)

www.shodh.net

''ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्र ''[2] अर्थात वह ब्रह्मविद्या है। योग शास्त्र या कर्तव्य शास्त्र है और अपने आपको प्रतिष्ठित करने के लिए ब्रह्मविद्या के दृढ़ आधार पर अवस्थित है।

गीता में प्रवृत्ति और निवृत्ति परक दोनों साधनों का अद्भुत समन्वय किया गया है साधारण अर्थ में किसी क्रिया में संलग्नता प्रवृत्ति है और क्रिया से अनासक्त होना निवृत्ति कहलाती है। इसी प्रकार सांसारिक दृष्टि से गृहस्थाश्रम प्रवृत्तिपरक और सन्यासाश्रम निवृत्ति परक कहलाती है, लेकिन गीता के अनुसार मनुष्य के मन के भीतर विषयों का राग, कामना, मोह, आसक्ति है, तो बाहरी निवृत्ति भी प्रवृत्ति है और मन के भीतर मोह आसक्ति नहीं है, तो बाहरी प्रवृत्ति भी निवृत्ति है, जो व्यक्ति बाहर की क्रियाओं से तो पूरी तरह निवृत्त हो गया है किन्तु मन से राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध, मोहादि का चिन्तन करता है तो उसकी इस प्रवृत्ति को गीता में मिथ्याचार या पाखण्ड बताया गया है–

''कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थन्वि मूढात्मा मिथ्याचार: स उच्यते।।[3]

गीता में कर्म योग ज्ञान, योग और भक्ति योग इन तीनों को प्रवृत्ति और निवृत्तिपरक दोनो ही माना गया है। इसका तात्पर्य है कि यह तीनों ही साधन गृहस्थाश्रम में रहते हुए उन कार्यों में प्रवृत्त होते हुये, सभी कार्यों को सम्पादित करते हुये भी किये जा सकते हैं और निवृत्ति में रहते हुये भी सांसारिक कार्यों से निवृत्त होकर किये जा सकते हैं।

प्रवृत्तिपरक कर्मयोग में कर्म फल की इच्छा, कामना, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आसक्ति न हो और अपने कर्तव्य का पालन किया जाये यह प्रवृत्ति कर्मयोग है, अर्थात शास्त्र विधि से कर्म करते हुये सांसारिक कार्यों को संपादित करते हुये भी लिप्त रहना प्रवृत्तिपरक कर्मयोग है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इसी सन्दर्भ में कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन् ।
मा कर्मफल हेतुर्भू ते संगोघ्स्त्वकर्मणि ।।
योगस्थ: कुरूकर्माणि संगत्यक्ता धनंजया:।
सिद्धयासिद्धयों: समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[4]

कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता की प्राप्ति नहीं होती और कर्मों के त्याग करने से भी नहीं–

नकर्मणामनारम्भान्नैश्कर्म्यं पुरूशोष्नुते।
न च सन्नसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।[5]

कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर होता है।

इसलिए नियत कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। ब्रह्मा जी ने भी सृष्टि निर्माण के समय प्रजा से कर्तव्य पालन करने के लिए कहा था–

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्टवा पुरोवाच प्रजापति:।
अनेन प्रसविश्यधवमेश बोऽस्त्विश्ट कामंधुक।।
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविता: ।
तैर्दत्तनप्रदा सैभ्यों यो भुंद्रस्तेन एव स:।।[6]

ईश्वर भी संसार में आकर लोक संग्रह के लिए कर्म करते हैं–

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रित:।
मम वर्त्मानुवर्तते मनुष्या: पार्थ सर्वष:।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेहदम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमा: प्रजा:।।[7]

निवृत्ति परक कर्मयोग में कर्मों से उदासीनता रहती है और सांसारिक वस्तुओं के त्याग का भाव रहता है पर यह भी मनुष्यों के कल्याण के लिए होता है अर्थात निवृत्ति परक कर्मयोग भी संसार के हित के लिए ही होता है। इसमें अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं होता। शरीर और अन्त:करण को वश में करने वाला और संसार की आशा से रहित कर्मयोगी शरीर सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी बन्धन में नहीं पड़ता –

निराषीर्यतचिन्तात्मा व्यक्त सर्वपरिग्रह:।
शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्निप्नोति किल्विशम् ।।[8]

गुण कर्म के विभाग को जानने वाला ज्ञान योगी यह मानता है कि सम्पूर्ण क्रियायें गुणों में ही हो रही है और कर्म करता हुआ भी उसमें आसक्त नहीं होता –

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुण कर्म विभागयों:
गुणा गुणेशु वर्तन्त इति मत्वा नसज्जते।।[9]

जिसमें अहं कृत भाव और फल की इच्छा नहीं है, वह घोर से घोर कर्म करने या

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

गीता में प्रवृत्ति-निवृत्ति साधन

डॉ0 (श्रीमती) कौशल्या

वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत, कालपी कालेज, कालपी, जालौन (उ0प्र0)

www.shodh.net

सम्पूर्ण प्राणियों को मारने पर भी उस कर्म के बन्धन से नहीं बँधता -

तत्रैव सतिकर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धिवान्न सपष्यति दुर्मतिः।।[10]

सांसारिक प्रवृत्ति से, कर्मों से निवृत्त होकर केवल परमात्मा का ध्यान चिन्तन करना एवं अपने स्वरूप का ध्यान करना निवृत्त परक ज्ञान योग कहा जाता है।

सांसारिक कर्मों को करते हुए भी भगवान की प्रसन्नता के लिए ईश्वर पर आश्रित होकर भगवन्पूजर्नाचन की दृष्टि से किया गया कर्म प्रवृत्तिपरक भक्ति योग है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि - ''तू जो कुछ भी कर्म करता है वह सब मुझे अर्पण दो। मेरे लिए कर्म करते हुए भी तुम सिद्धियों को प्राप्त हो जाओगे-

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्घमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।[11]

मनुष्य अपने अपने कर्मों को करते हुए ईश्वर का पूजन करके सिद्धि को प्राप्त हो जाता है-

यतः प्रवत्तिभूर्तानां येनसर्व-मिदंतरम्।
स्वकर्मणा तमम्यर्च सिद्धिं विन्दति मानवः।।[12]

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग इन तीनों ही साधनों में निवृत्ति है और प्रवृत्ति भी अर्थात प्रवृत्ति में भी निवृत्ति और निवृत्ति में भी निवृत्ति, क्योंकि इन तीनों साधनों से भगवत्कृपा प्राप्त होती है और मनुष्य का मोक्ष हो जाता है। गीता में सर्वांग पूर्णतावाद है। इसमें प्रवृत्ति से निवृत्ति नहीं अपितु प्रवृत्ति में निवृत्ति का उपदेश दिया गया है। इसी में विश्वबन्धुत्व व संसार का कल्याण है।

वास्तव में गीता, देश-काल से परे है। अपने अधिकारों का दावा और उपयोग करने के लिए हम अपने कर्तव्यों की अवहेलना करते हैं। इसलिए गीता के ज्ञान की आवश्यकता हमेशा की तरह इस समय भी बहुत है और आगे आने वाले समय में भी इसका मूल्य और बढ़ता जायेगा। यही इसकी महानता का चिह्न है-

सर्वोपानिषदों गावो दोग्ध गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्स सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. श्रीमद्भगवद्गीता -2/22, 2. श्रीमद्भगवद्गीता पुश्पिका, 3. श्रीमद्भगवद्गीता 3/6, 4.श्रीमद्भगवद्गीता 2/47-48, 5. श्रीमद्भगवद्गीता 3/4, 6. श्रीमद्भगवद्गीता 3/10-12, 7. श्रीमद्भगवद्गीता 3/22-24, 8. श्रीमद्भगवद्गीता 4/21, 9. श्रीमद्भगवद्गीता 3/28, 10. श्रीमद्भगवद्गीता 18/17, 11. श्रीमद्भगवद्गीता 12/10, 12. श्रीमद्भगवद्गीता 18/46